



जलवायु-अनुकूल ग्रामीण अवसंरचना

डॉ. हरेंद्र राज गौतम

जलवायु परिवर्तन ग्रामीण भारत को तेजी से प्रभावित कर रहा है, ऐसे में जीवन, आजीविका और विकास की उपलब्धियों की रक्षा के लिए जलवायु-सहनीय ग्रामीण अवसंरचना आवश्यक है। सड़क, आवास, ऊर्जा, जल संसाधन और सामुदायिक परिसंपत्तियों को बाढ़, सूखा, लू जैसी जलवायुजनित चुनौतियों का सामना करने में सक्षम बनाना होगा। साथ ही, अवसंरचना किफायती, टिकाऊ और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप हो। ऐसी अवसंरचना कृषि उत्पादकता, आवश्यक सेवाओं की पहुँच और सामुदायिक सुरक्षा को मजबूत करते हुए विकसित भारत@2047 की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

ज

लवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम पूरी दुनिया में स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। इसके कारण चरम मौसमी घटनाओं की तीव्रता और भयावहता लगातार बढ़ रही है। इस वर्ष अनुभव किए जा रहे अल नीनो के प्रभाव भी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जर्मनवॉच द्वारा जारी 'जलवायु जोखिम सूचकांक 2026' के अनुसार, वर्ष 1995 से 2024 के बीच विश्वभर में 9,700 से अधिक ऐसी घटनाओं से 5.6 अरब से अधिक लोग प्रभावित हुए। इन घटनाओं में लगभग 8.32 लाख लोगों की जान गई और 4.5 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर

से अधिक का प्रत्यक्ष आर्थिक नुकसान हुआ। इस रिपोर्ट के अनुसार, चरम मौसमी घटनाओं से सर्वाधिक प्रभावित देशों में भारत विश्व में नौवें स्थान पर है। बीते तीन दशकों के दौरान देश में ऐसी लगभग 430 घटनाएँ हुईं, जिनसे करीब 170 अरब अमेरिकी डॉलर का आर्थिक नुकसान हुआ। इनसे एक अरब से अधिक लोग प्रभावित हुए और 80 हजार से अधिक लोगों की मृत्यु हुई। भारत की ग्रामीण आबादी के लिए जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न खतरे निरंतर गंभीर होते जा रहे हैं। इसका प्रमुख कारण आजीविका के लिए कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, बाढ़ और सूखे जैसी भीषण मौसमी स्थितियों का अधिक जोखिम

लेखक राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार में सलाहकार हैं। ईमेल: hrg_mpp@yahoo.com



तथा सुदृढ़ स्वास्थ्य सेवाओं, सामाजिक सुरक्षा और जलवायु-अनुकूल बुनियादी ढाँचे तक सीमित पहुँच है।

हमारे प्राकृतिक परिवेश से अभिन्न रूप से जुड़े जनजातीय समुदाय विशेष रूप से कई प्रकार की पर्यावरणीय और सामाजिक-आर्थिक असुरक्षाओं का सामना कर रहे हैं। इनमें से अनेक समुदाय जंगलों, पहाड़ियों और वर्षा-आधारित इलाकों जैसे संवेदनशील क्षेत्रों में निवास करते हैं तथा उनकी आजीविका आसपास के पारिस्थितिकी तंत्र से गहराई से जुड़ी है। ऊर्जा, पर्यावरण एवं जल परिषद के एक अध्ययन के अनुसार, भारत के 75 प्रतिशत से अधिक जिले चक्रवात, बाढ़, सूखा, लू और शीतलहर जैसी चरम जलवायु घटनाओं की दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील हैं। इन जिलों में 63.8 करोड़ से अधिक लोग रहते हैं। अध्ययन में यह भी बताया गया है कि वर्ष 1970 से 2005 तक के 35 वर्षों में ऐसी 250 घटनाएँ दर्ज की गईं, जबकि वर्ष 2005 के बाद केवल 15 वर्षों में ही इनकी संख्या बढ़कर 310 हो गई। पिछले 50 वर्षों में भीषण बाढ़ की घटनाओं की संख्या लगभग आठ गुना बढ़ी है और इनसे प्रतिवर्ष 9.7 करोड़ से अधिक लोग प्रभावित होते हैं। मौसम की विकट स्थितियों के कारण वर्ष 2005 के बाद सूखे से प्रभावित जिलों की वार्षिक औसत संख्या में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में लाखों लोगों को कृषि संकट का सामना करना पड़ रहा है।

जलवायु परिवर्तन के निकट भविष्य में सामने आने वाले प्रभाव जैसे तापमान में वृद्धि, वर्षा के स्वरूप में बदलाव, अधिक बार और अधिक तीव्र होने वाली चरम मौसमी घटनाएँ तथा समुद्र-स्तर में वृद्धि-ऊर्जा और परिवहन से लेकर जल, अपशिष्ट प्रबंधन और दूरसंचार तक सभी प्रकार की आधारभूत सुविधाओं को प्रभावित करेंगे। जलवायु-सहनशीलता किसी व्यवस्था या समुदाय की वह मूल क्षमता है, जिसके बल पर वह प्रभावी जोखिम प्रबंधन के माध्यम से जलवायु संबंधी खतरों का सामना कर सके, उनके प्रभावों को सह सके, बदलती परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढाल सके और उनसे उबरते हुए अपने आवश्यक कार्यों को जारी रख सके। दुनियाभर में चरम मौसमी घटनाओं की तीव्रता बढ़ने के साथ यह क्षमता मानव जीवन, आर्थिक स्थिरता और संवेदनशील पारिस्थितिक तंत्रों की सुरक्षा के लिए और भी महत्वपूर्ण हो गई है। इसलिए ऐसी तकनीकों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, जो किसी आपदा या खतरे के प्रभावों को सहने, आत्मसात करने, परिस्थितियों के अनुरूप ढलने, आवश्यक बदलाव करने और समयबद्ध तथा प्रभावी ढंग से सामान्य स्थिति में लौटने में सक्षम हों। साथ ही, जोखिम प्रबंधन के माध्यम से आवश्यक संरचनाओं और प्रमुख सेवाओं को बनाए रखना तथा क्षति होने पर उन्हें शीघ्र बहाल करना भी जरूरी है। ग्रामीण क्षेत्रों में जलवायु-सहनीय आधारभूत सुविधाओं का अर्थ स्थानीय सड़कों, जल प्रणालियों और ऊर्जा नेटवर्क जैसी भौतिक सुविधाओं की योजना, डिजाइन

और रखरखाव इस प्रकार करना है कि वे बाढ़, सूखा और भूस्खलन जैसी चरम मौसमी घटनाओं का सामना कर सकें। इस प्रकार की योजना और प्रयास जोखिमग्रस्त कृषि आश्रित समुदायों को वर्ष भर बाजारों, चिकित्सा सहायता और अन्य आवश्यक सेवाओं तक पहुँच सुनिश्चित कर उनकी सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

स्वच्छ ऊर्जा

ऊर्जा विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है और नवीकरणीय ऊर्जा प्रकृति तथा पर्यावरण के साथ सामंजस्य बनाए रखते हुए सतत विकास सुनिश्चित कर सकती है। नवीकरणीय ऊर्जा आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने, ऊर्जा सुरक्षा को सुदृढ़ करने, ऊर्जा तक पहुँच को सुगम बनाने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। भारत की भूमध्य रेखा के निकट भौगोलिक स्थिति के कारण देश के कई हिस्सों में वर्ष में 300 से अधिक दिन पर्याप्त धूप मिलती है, जो सौर ऊर्जा उत्पादन की दृष्टि से हमें विशेष रणनीतिक बढ़त देती है। इसी प्रकार, लगभग 8,000 किलोमीटर लंबी तटरेखा पवन ऊर्जा के विकास के लिए भी भारत को अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करती है। नवीकरणीय ऊर्जा हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में समृद्धि ला सकती है।

राष्ट्रीय सौर ऊर्जा संस्थान ने देश की लगभग 3 प्रतिशत बंजर भूमि पर सौर ऊर्जा सुविधाएँ स्थापित किए जाने की संभावना को आधार मानते हुए भारत की सौर ऊर्जा क्षमता करीब 748 गीगावॉट आँकी है। नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों में सौर ऊर्जा ने अपना वर्चस्व बनाए रखा और इसका योगदान 164.59 गीगावॉट रहा। वहीं, पवन ऊर्जा (58.14 गीगावॉट), जलविद्युत (57.24 गीगावॉट), जैव-ऊर्जा (11.75 गीगावॉट) और परमाणु ऊर्जा (8.78 गीगावॉट) का भी उल्लेखनीय योगदान रहा। वर्ष 2025-26 में देश में रिकॉर्ड 55.29 गीगावॉट गैर-जीवाश्म ईंधन आधारित विद्युत उत्पादन क्षमता जोड़ी गई। इसमें सौर ऊर्जा की हिस्सेदारी 44.6 गीगावॉट और पवन ऊर्जा की 6 गीगावॉट रही।

गुजरात का मोढेरा देश का पहला सौर ऊर्जा संचालित गाँव है। यहाँ आवासीय और सरकारी भवनों की छतों पर 1,300 सौर पैनल लगाए गए हैं। गाँव के सौर ऊर्जा संयंत्र ने न केवल बिजली के बिलों को शून्य कर दिया है बल्कि यह आय का स्रोत भी बन रहा है। उत्पादित अतिरिक्त बिजली ग्रिड को बेच दी जाती है। ऐसी पहलें कई राज्यों में की जा रही हैं। तेलंगाना के गाँवों में घरों की छतों से लेकर कृषि फीडरों तक विकेंद्रीकृत सौर प्रणालियाँ अपनाने की तैयारी चल रही है। इससे बिजली कटौती और लागत कम होगी तथा परिवारों और किसानों को स्थानीय स्तर पर अधिक भरोसेमंद बिजली मिल सकेगी। हिमाचल प्रदेश भी हरित ऊर्जा राज्य बनने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। हिमाचल प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड द्वारा कुल 728.4 मेगावाट



मिशन मौसम: भारत की मौसम और जलवायु सेवाओं को सशक्त बनाना



क्षमता की सौर परियोजनाओं पर काम किया जा रहा है, जो प्रगति के विभिन्न चरणों में हैं। इनमें 150.13 मेगावाट क्षमता वाली 120 भूमि-आधारित सौर परियोजनाओं पर कार्य शुरू हो चुका है। वर्ष 2026-27 में 23,731 करोड़ रुपये के परिव्यय के साथ शुरू की गई कम्प्रेस्ड बायोगैस की राष्ट्रीय एकीकृत योजना 'गोबरधन' एक महत्वपूर्ण पहल है। इसका उद्देश्य भारत की जैविक संपदा को स्वच्छ ऊर्जा, ग्रामीण समृद्धि और आर्थिक प्रगति का माध्यम बनाना है। इसके तहत देश में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध फसल अवशेषों, गोबर, प्रेस मड, नगर निकायों के जैविक कचरे और अन्य बायोमास संसाधनों से स्वच्छ ईंधन एवं जैविक खाद तैयार की जाएगी। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में आय के नए अवसर पैदा होंगे और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को भी लाभ मिलेगा।

हरित ग्रामीण अवसंरचना की आवश्यकता

भवन निर्माण क्षेत्र अर्थव्यवस्था को गति देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह रोजगार सृजन, अवसंरचना के विस्तार और समग्र आर्थिक प्रगति में योगदान देता है। लेकिन इसके साथ ही भारत के कुल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में लगभग एक-तिहाई हिस्सेदारी भी इसी क्षेत्र की है। इसमें बिजली तथा खाना पकाने के ईंधन जैसी दैनिक गतिविधियों से होने वाला उत्सर्जन तथा सीमेंट, इस्पात, ईट, एल्युमीनियम और काँच जैसी निर्माण सामग्रियों में निहित उत्सर्जन शामिल है। भवन निर्माण क्षेत्र के कुल उत्सर्जन में लगभग आधा हिस्सा निर्माण सामग्रियों से जुड़े कार्बन उत्सर्जन का है। इसलिए हमें जलवायु-अनुकूल भवन निर्माण की अपनी समृद्ध सभ्यतागत परम्परा को अपनाने की

आवश्यकता है, जिसकी नींव सततता की अवधारणा पर टिकी है। ग्रामीण भारत के पारम्परिक भवनों की बनावट मूलतः सतत और जलवायु-अनुकूल होती है। इनके निर्माण में मिट्टी, बाँस, फूस और पत्थर जैसी स्थानीय सामग्रियों का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, मिट्टी तथा कृषि अवशेषों से बनी मिश्रित दीवारें गर्मी और सर्दी, दोनों मौसमों में भवन के भीतर के तापमान को प्राकृतिक रूप से नियंत्रित करती हैं।

जलवायु-अनुकूल निर्माण का एक अन्य उपाय निर्माण एवं विध्वंस से निकले मलबे का दोबारा उपयोग करना है। इससे लाखों टन मलबे को लैंडफिल में जाने से रोककर भवन निर्माण में उपयोगी सामग्री में बदला जा सकता है। ऐसी संरचनाएँ स्थानीय मौसम के अनुरूप स्वयं को स्वाभाविक रूप से ढाल लेती हैं और बिना किसी यांत्रिक शीतलन या तापन व्यवस्था के भीतर के वातावरण को गर्मियों में ठंडा तथा सर्दियों में गर्म रखती हैं। वास्तुशास्त्र, मानसार, मयमतम् और समरांगण सूत्रधार जैसे प्राचीन वास्तु ग्रंथों में भवनों को जीवंत इकाइयों के रूप में देखा गया है। देश-काल-परिस्थिति अर्थात् स्थान, समय और परिस्थिति के सिद्धांत पर आधारित इन ग्रंथों में भवनों को सूर्य, वायु और जल जैसी प्राकृतिक शक्तियों के अनुरूप बनाने पर बल दिया गया है ताकि सामंजस्यपूर्ण और स्वास्थ्यप्रद वातावरण तैयार हो सके।

परम्परागत स्थानीय वास्तुकला में आंगन, भीतर के तापमान को संतुलित रखने वाली मोटी दीवारें, प्राकृतिक वायु-संचार, धूप से बचाव की व्यवस्था और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्रियों का उपयोग किया जाता था। इन उपायों से ऐसे आरामदायक, मौसम की मार सहने में सक्षम और लंबे समय तक उपयोगी भवन बनाए जाते थे, जिनके निर्माण में अपेक्षाकृत कम ऊर्जा लगती थी। ये पद्धतियाँ स्थानीय जलवायु और परिवेश के साथ सामंजस्य स्थापित करके भवन बनाने की हमारी सदियों पुरानी परम्परा को दर्शाती हैं। भारत में जलवायु-अनुकूल और ऊर्जा-कुशल ग्रामीण आवास अत्यंत आवश्यक हैं। इनसे कमजोर आबादी को चरम मौसमी घटनाओं से बचाया जा सकता है, पारम्परिक निर्माण से होने वाला अधिक कार्बन उत्सर्जन घटाया जा सकता है और ऊर्जा की कमी दूर की जा सकती है।

प्राकृतिक शीतलन, सौर ऊर्जा और स्थानीय पर्यावरण-अनुकूल सामग्रियों को अपनाकर ग्रामीण आवासों को भविष्य की जलवायु चुनौतियों के लिए तैयार किया जा सकता है। यह राष्ट्रीय नेट-जीरो लक्ष्यों को प्राप्त करने में भी सहायक होगा। वर्ष 2022-23 में शुरू किया गया 'जलवायु-अनुकूल गाँव कार्यक्रम' तमिलनाडु सरकार की एक प्रमुख पहल है। इसका संचालन तमिलनाडु जलवायु परिवर्तन मिशन के तहत किया जा रहा है। इसका उद्देश्य गाँवों को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में सक्षम बनाना है। कार्यक्रम में जलवायु की दृष्टि से संवेदनशील 11 जिलों को शामिल किया गया है। सौर ऊर्जा, जल प्रणालियों और

पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली से जुड़ी पहलों के माध्यम से अब तक 27 लाख लोग लाभान्वित हुए हैं। किल्लई पहला ऐसा गाँव है, जो जलवायु संबंधी खतरों का सामना करने वाली तटीय बस्ती से बदलकर एक सफल जलवायु-अनुकूल आदर्श गाँव बना है। यहाँ पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली, नवीकरणीय ऊर्जा और सामुदायिक स्तर पर किए गए प्रयासों से चक्रवात, समुद्र-स्तर में वृद्धि, खारे पानी के प्रवेश, तटीय कटाव और जैव विविधता के क्षरण जैसी समस्याओं का सफलतापूर्वक समाधान किया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में संपर्क और विकास के लिए सड़कों भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इसलिए भारी वर्षा और बाढ़ का सामना कर सकने वाली जलवायु-अनुकूल सड़क निर्माण तकनीकों को अपनाने की आवश्यकता है। इन तकनीकों में प्लास्टिक कचरे के बारीक टुकड़ों, इस्पात उद्योग से निकले स्लैग और रबर के चूरे को अलकतरे में मिलाया जाता है। इसके साथ ही स्थानीय कृषि जैव सामग्री और प्राकृतिक रेशों का भी उपयोग किया जाता है। इससे नए बिटुमेन की खपत और कार्बन उत्सर्जन कम करने के साथ-साथ बरसात में सड़कों पर गड्ढे बनने की समस्या को भी रोका जा सकता है। उन्नत प्लास्टिक जियोसेल में स्थानीय मिट्टी का उपयोग करके पहाड़ी भू-भाग को स्थिर बनाया जाता है। इसी प्रकार, पुरानी सड़क की अलकतरे वाली परत को मशीन से हटाकर और पीसकर नई सड़क की परतों में दोबारा मिलाया जाता है। इससे खदानों से नया पत्थर निकालने और सड़क की परतों को बांधने के लिए नई सामग्री की आवश्यकता काफी कम हो जाती है।

फ्लाई ऐश और इस्पात स्लैग जैसे औद्योगिक उप-उत्पादों का उपयोग सड़क के मजबूत उप-आधार और नींव की परतों में पारम्परिक गिट्टी के स्थान पर किया जाता है। उपयोग की अवधि पूरी कर चुके वाहनों के टायरों को भी बारीक टुकड़ों में काटकर रबर के चूरे में बदला जा सकता है। इसे सड़क निर्माण में मिलाने से सड़क की सतह अधिक लचीली बनती है और यातायात का शोर कम होता है। ग्रामीण विकास मंत्रालय के अनुसार, जुलाई 2025 तक प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अंतर्गत अपशिष्ट प्लास्टिक तकनीक से 43,700 किलोमीटर सड़कों का निर्माण किया जा चुका था। योजना के तहत कम-से-कम 70 प्रतिशत सड़क परियोजनाओं में अपशिष्ट प्लास्टिक तकनीक का उपयोग करना अनिवार्य है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान मद्रास द्वारा किए गए अनेक अध्ययनों में पाया गया है कि प्लास्टिक कचरे से बनी सड़कों का प्रदर्शन सामान्य सड़कों की तुलना में बेहतर होता है।

गुजरात सरकार ने हरित तकनीक से कुल 271 किलोमीटर लंबी 20 जलवायु-अनुकूल सड़कों के निर्माण के लिए राज्य के बजट में 1,147 करोड़ रुपये आवंटित किए हैं। राज्य सरकार की इस पहल में पर्यावरण-अनुकूल और लंबे समय तक उपयोगी सड़क संरचना विकसित करने, पुरानी सड़क की सतह से



निकली सामग्री का पुनर्वर्चक्रण करने तथा दरारों को रोकने वाली उन्नत परतों के उपयोग पर बल दिया गया है। कर्नाटक भी प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना-III जैसे राष्ट्रीय कार्यक्रमों के अंतर्गत हजारों किलोमीटर ग्रामीण सड़कों को बेहतर बनाने के लिए पर्यावरण-अनुकूल निर्माण सामग्री और जलवायु अनुकूल इंजीनियरिंग तकनीकों को अपना रहा है। इन हरित पहलों में अपशिष्ट प्लास्टिक, कोल्ड-मिक्स तकनीक, फ्लाई ऐश और जियोसेल का उपयोग किया जाता है, जिससे कार्बन उत्सर्जन कम होता है और मानसून के दौरान सड़कों को होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है।

जल संसाधनों का संरक्षण

जल सतत विकास के केंद्र में है। सामाजिक-आर्थिक प्रगति, ऊर्जा और खाद्य उत्पादन, स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र तथा मानव अस्तित्व के लिए इसका अत्यधिक महत्व है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के अनुरूप ढलने में भी जल की केंद्रीय भूमिका है, क्योंकि यही समाज और पर्यावरण के बीच महत्वपूर्ण कड़ी का काम करता है। जलवायु में बदलाव के कारण समुद्र का स्तर बढ़ रहा है, वर्षा का क्रम बिगड़ रहा है तथा सूखे और चरम मौसमी स्थितियों की घटनाएँ बढ़ रही हैं। जल संसाधन प्रणालियों में जलवायु के कारण होने वाले बदलाव अर्थव्यवस्था, खाद्य प्रणाली, ग्रामीण क्षेत्रों, ऊर्जा, स्वास्थ्य और पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करते हैं। इनसे छोटे किसानों सहित विभिन्न समुदायों की सुरक्षा भी खतरे में पड़ती है।

वैश्विक तापमान में वृद्धि से मनुष्यों और पारिस्थितिकी तंत्रों के लिए जोखिम और गंभीर होने का अनुमान है। स्थिति की भयावहता का अंदाजा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि पिछले एक दशक में प्राकृतिक खतरों से उत्पन्न दस में से नौ आपदाएँ जल से जुड़ी थीं। ऐसे जोखिमों का दायरा अभूतपूर्व गति से फैल रहा है और आपदाएँ पहले से अधिक बार तथा अधिक विनाशकारी रूप में सामने आ रही हैं। इनके कारण होने वाला आर्थिक नुकसान भी लगातार बढ़ रहा है, जिसकी भारी कीमत जनजीवन, प्रकृति, आर्थिक संसाधनों और अवसंरचना को चुकानी पड़ रही है। पिछले दस वर्षों में जल-संबंधी आपदाओं से होने वाली मौतों की संख्या दोगुनी से अधिक हो गई है। वर्ष 2010 से 2019 के बीच अवसंरचना को हुई लगभग 95 प्रतिशत क्षति जल-संबंधी आपदाओं के कारण दर्ज की गई। वहीं, वर्ष 2000 से 2019 के दौरान कम-से-कम 1.4 अरब लोग सूखे और 1.6 अरब लोग बाढ़ से प्रभावित हुए।

अतिरिक्त वर्षाजल के बहाव को समाहित करने के लिए आद्रभूमियों, बाढ़ के मैदानों और प्राकृतिक तालाबों का पुनरुद्धार आवश्यक है। ऊपरी क्षेत्रों के वनों की रक्षा और कृषि वानिकी अपनाने से मृदा अपरदन को रोका जा सकता है, क्योंकि पेड़ों की गहरी जड़ें मिट्टी को मजबूती से थामे रखती हैं, भारी वर्षा के

पानी के बहाव को धीमा करती हैं और संवेदनशील पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन को रोकती हैं। प्रबंधित जलभृत पुनर्भरण (एमएआर) के तहत अतिरिक्त सतही बहाव और बाढ़ के पानी को एकत्र कर जमीन के भीतर पहुँचाया जाता है। इससे क्षीण होते जलभृतों का पुनर्भरण होता है और साथ ही निचले क्षेत्रों में बाढ़ का जोखिम भी कम होता है। इसके अलावा, स्थानीय जल समितियों को सशक्त बनाया जाना चाहिए ताकि वे सामुदायिक सुरक्षा योजनाएँ तैयार कर सकें तथा जल के समान वितरण की नीतियों और पारदर्शी मूल्य-निर्धारण व्यवस्था को लागू कर सकें।

पारम्परिक स्थानीय ज्ञान को औपचारिक जल-संभर प्रबंधन में शामिल करने से समुदाय-आधारित पारिस्थितिक निगरानी और आधुनिक विज्ञान के समन्वय से जलवायु-अनुकूल प्रणालियाँ विकसित होती हैं। पारम्परिक जल-संभर प्रबंधन में वर्षाजल को संचित करने, मृदा अपरदन रोकने और स्थानीय भूजल का पुनर्भरण करने के लिए समोच्च खाइयों, चेक डैम और कृषि-तालाबों जैसी लंबे समय से कारगर सिद्ध हुई स्थानीय विधियों का उपयोग किया जाता है। समुदाय के नेतृत्व में अपनाई जाने वाली ये पद्धतियाँ जल की उपलब्धता बढ़ाती हैं और फसलों की उपज में दीर्घकालिक सुधार लाती हैं। केंद्र सरकार द्वारा वर्ष 2011 में शुरू की गई 'जलवायु-अनुकूल कृषि में राष्ट्रीय नवाचार' (एनआईसीआरए) एक महत्वपूर्ण नेटवर्क परियोजना है, जिसका उद्देश्य खेती को जलवायु प्रभावों का सामना करने में सक्षम बनाना है। इसके तहत देश के 151 संवेदनशील जिलों में 448 जलवायु-अनुकूल गाँव स्थापित किए गए हैं। राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन (एनएमएसए) वास्तव में वर्ष 2014-15 में राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्ययोजना के अंतर्गत शुरू किया गया था। यह वर्षा संचित क्षेत्र विकास, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन और 'प्रति बूँद अधिक फसल' जैसे प्रमुख घटकों के माध्यम से जलवायु-अनुकूल खेती को बढ़ावा देता है।

भारत को ग्राम स्तर पर ऐसी हरित अर्थव्यवस्था विकसित करने पर ध्यान देना होगा, जो कम कार्बन उत्सर्जन वाली हो, संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करे और सामाजिक रूप से समावेशी हो। स्वच्छ एवं हरित पहलें मानव विकास सूचकांक को बेहतर बनाने और सतत विकास सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसे प्रकृति-आधारित समाधानों के माध्यम से हासिल किया जा सकता है। ये समाधान इस सिद्धांत पर आधारित हैं कि स्वस्थ और सुचारु रूप से कार्य करने वाले पारिस्थितिकी तंत्र अनेक लाभ प्रदान कर सकते हैं, जो सामाजिक और पर्यावरणीय कल्याण का आधार बनते हैं। आधारभूत संरचनाओं में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना करने की क्षमता सुनिश्चित करने से जीवन और आजीविका की रक्षा करने तथा चरम मौसमी घटनाओं से होने वाली प्रत्यक्ष हानियों को कम करने में भी बेहद सहयोग मिलेगा। □

